IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

कथा को कविता रुपी माला पहनाने वाले कवि श्री सत्यनारायन गुबरेले "कवि सनागो"

[1]कु. हेमन्त द्विवेदीए [2]डॉ.पुष्पा दुबे

[1]पी-एच.डी. शोघार्थी (हिन्दी विभाग) [2]शोध निर्देशक ;विभागाध्यक्ष हिन्दी विभाग)

[1]हिन्दी अध्ययनशाला एवं शोध केन्द्र, महाराजा छत्रसाल बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय छतरपुर (म.प्र.)

[2]हिन्दी अध्ययनशाला एवं शोध केन्द्र, महाराजा छत्रसाल बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय छतरपुर (म.प्र.)

प्रस्तावनाः- श्री सत्यनारायन गुबरेले जी "कवि सनागो" छतरपुर के ऐसे प्रमुख कवियों में से है जिनकी पहचान उनकी कविताओं से है। इन्होने अपनी व्यथा, मनोभाव से प्रेरित होकर उन भावों को कविता के भावों में पिरो दिया। विविध आयामों के क्षेत्रो को चुनकर किसी एक विषय पर केन्द्रित न होकर विविध क्षेत्रो से कविता को प्रस्तुत किया। इन्ही कविताओं मे से एक कविता "कबीर का आत्मबोध" है। इस कथा को इन्होने कविता के माध्यम से सुसज्जित करके काव्य कथा का रुप प्रदान किया।

मूल शब्दः- कवि गुरू, आत्मगुरू, आत्मबोध , काम - जय, अग्नि परीक्षा ।

विषय वस्तुः- कविता साहित्य की वह विधा है जिसमें किसी मनोभाव को कलात्मक रुप से भाषा के द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। कविता का उदय सृष्टि से मानवीय सवेंदना के साथ ही हुआ प्रतीत होता है। और मानव एक संवेदनशील प्राणी है जिससे उसका मन अपने शरीर पर पड़ने वाले सुख-दुख, प्रेम, दया, क्रोध एवं आशा से प्रभावित होता है, उसकी इस अनुभूति का सहज प्रस्तुतीकरण ही कविता का रुप ले लेती है।

कवि सनागो जी ने कबीरदास जी को अपना कवि गुरु ही नही आत्मा गुरु भी माना है। अतः कवि सनागो जी पर कबीरदास का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। कवि सनागो जी ने अपने प्रिय कवि के बारे में बताया कि "है नही, रहे आये है। यह तो अपने आप में एक इतिहास जैसा है होश सम्हालते ही मैने पाया कि प्रसाद जी मेरे प्रिय-कवि है, तो आँसू और कामायनी से लेकर इनके नाटक चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त तक अन्य सभी मुझे नशे में सरोबार किये रहे, किन्तु 4-6 वर्षों के अन्तराल से मैंने अनायास ही स्वयं को कबीर से घिरा हुआ पाया । वस्तुतः वे मेरे जीवन और व्यक्तित्व की आवश्यकता थे मेरे भीतर के मनुष्य को उन्होने ही संजोया सँवारा अर्थात गढ़ा , वे न केवल मेरे काव्य गुरु बने, अपितु आध्यात्मिक - गुरु भी बने। ऐसे में यदि कबीर की सहजता मेरी कविता का आर्दश हो तो अचरज क्या? यह स्थिति अनेक वर्षो तक रही । तभी एक दिन मैंने अनुभव किया कि मेरे प्रिय कवि "दिनकर" है। मेरे काव्य-शिल्प पर उनका प्रभाव भी परिलक्षित हुआ। पर आज? आज मेरे प्रिय कवि कोई नही है। केवल

कविता है, वह भी नई कविता जो मुझे प्रिय ही नही प्रियतर है क्योंकि उसका उत्स मनोविज्ञान है। देह विज्ञान नही।"[1]

कवि सनागो जी की अन्य कविताओं में उनका काव्य "कबीर का आत्मबोध" लम्बी कविता है जिसमें कथा का रूप निहित है। कवि सनागो जी ने "कबीर का आत्मबोध" की पीठिका में बताया कि "कहा जाता है कि संत -शिरोमणि कबीरदास जी का आतिथ्य उनके अत्यन्त सीमित साधनो के होते हुये भी कभी लज्जित नही हुआ अनेक बार ऐसा भी हुआ कि दम्पत्ति ने स्वयं भूखे रहकर भी अतिथि के लिये समुचित भोजन व्यवस्था की । तभी एक बार दुदैव ने उनकी परीक्षा ली - अग्नि परीक्षा । इधर घर में अतिथि, उधर भोजन सामग्री नाम-मात्र को भी नही । तब गृहलक्ष्मी चली दुकानदार से भोजन सामाग्री प्राप्त करने , किन्तु पूर्व की उधारी के चलते इस बार उसने बिना मूल्य चुकाये सामाग्री देने से इंकार कर दिया। पर्याप्त अनुनय-विनय के उपरान्त वह राजी भी हुआ इस शर्त पर रात्रि को वह उसकी सेज पर उसे उपकृत करेगी। विवशता को आपदधर्म मान उसने इस तक को स्वीकार कर लिया और अपने आतिथ्य की गौरव-रक्षा की। इधर अतिथि गृहस्थ की मंगल-कामना करता हुआ विदा हुआ, उधर लोई पछाड़ खाकर गिर पड़ी। "हाय, वह यह क्या वचन दे आई है" यही थी उसकी प्राणान्तर वेदना । तभी कबीर ने लोई का अरण्य-रोदन सुना और वे दौड़कर उसके समीप जा पहुँचे। बस इसी पृष्ठभूमि में जन्म लेती है ये कविता -

-"कबीर का आत्मबोध"- [2]

कवि सनागो जी ने "कबीर का आत्मबोध" में लोई के दिये वचन के बाद उसकी स्थिति का बड़ा ही हद्रयस्पर्शी वर्णन प्रस्तुत किया जैसा कि हम सभी जानते है कि कबीरदास जी स्वयं ऐसे परिवार के थे जिसे सदा आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । आर्थिक विषमता तथा आर्थिक संकट से दुखी होकर कबीरदास जी को कहना पड़ा कि - हे ईश्वर! हमसे भूखे पेट भक्ति नही की जाती, तू अपनी यह माला सँभाल - "भूखे भगति न कीजै, यह माला अपनी लीजे"।[3] लेकिन इसका तात्पर्य यह नही है कि उन्होने कुछ अधिक चाहा हो, उन्होने तो उतना ही ईश्वर से माँगा जिसमें कुटुम्ब का पालन-पोषण हो सके - "साई इतना दीजिये जामे कुटुम्ब समाय। मैं भी भूखा न रहूँ, साधू न भूखा जाय "।[4] धन धरती का संचय तो कबीर की संतोषी प्रवृति के विरुद्ध था उन्होने कहा भी है -

"काहे कूँ भीत बनाऊ टॉटी का जाणूँ कहँ परिहै माटी।
काहे कूँ मन्दिर महल चिनाउ, मूँवा पीछे घड़ी एक न रहन पाँऊ।
काहे कूँ छाऊँ ऊँच उचेरा साढे तीन हाथ घर मेरा।
कहे कबीर गरब न कीजै जेता तन तेती भुइ लीजै।[5]

और इसी निर्धनता के समय जब एक अतिथि घर आ जाता है तो उसका सत्कार भी जरुरी है क्योंकि जो व्यक्ति आतिथि को देखकर हर्षित नही होता और उसे जाते हुये देख दुख का अनुभव नही करता उसकी कभी मुक्ति नही होती -

"आवत साधू न हरषिया, जात न दीया रोय।
कहै कबीर ता दास की, मुक्ति न कबहूँ होय।।"[6]

और आगन्तुक को बुलाकर सत्कार करने वाले को संसार मे यश मिलता है

"छाजन भोजन प्रीति सो दीजै साधु बुलाय।
जीवत यश होय जगत में, अंत परम पद पाय"।।"[7]

अर्थात अतिथि-सेवा तो परलोक तक के लिये पुन्यकारी होती है। आर्दश गृहस्थ का तो धर्म है साधु की यथा सम्भव सेवा करना, क्योंकि वह अतिथि के रुप में भगवान की ही सेवा कर रहा है। मान्यता भी है कि अतिथि देवो भवः

अन्ततः इन्ही सभी मान्यताओं को मानकर लोई उस दुकानदार को वचन दे आती है और फिर उसकी इसी व्यथा के कारण उनका विलाप शुरु होता है तो कबीरदास जो उसकी करूण दशा और उनके विलाप का कारण पूछते है कि प्रिये वह कौन सी पीड़ा है उसे मुझे बताओ और अपने दुख मे मुझे भी शामिल करो क्योंकि एक दम्पति का रिश्ता ही ऐसा होता है कि वह सुख दुख में एक दूसरे का साथ दे

"लोई, तू रोई, क्या हुआ शुभे , कुछ बोलो तो
पीड़ा की कारा में बन्दी, अपनी वाणी तुम खोलो तो
क्या हुआ कहो कल्याणी, चन्दा मुरझाया
क्या हुआ अचानक ऐसा , सूरज शरमाया
मेरे स्वप्नों की सोनजूही, मेरे प्राणों की अमरजोत
क्या हुआ कहो ऐसा कि आज पावस-नद का उन्मुक्त स्रोत
ये मौन हिचकियाँ, मुखर वेदना, मैं व्याकुल
उन्माद भरी इस उलझन में अन्तर आकुल
ओ प्रिये, मुझे भी पीड़ा में अपनी, सहभागी होने दो
जो व्यथा - भार तब प्राणों को झकझोर रहा,
किंचित, मुझको भी ढ़ोने दो। "[8]

कबीरदास के पूछने पर भी लोई ने कुछ नही बताया और अपने आँसूओ को पिरो-पिरो कर व्यक्त किया उन्होने कुछ न कहते हुए भी सब कुछ कह दिया तब लोई के अग्नि की लपटो के समान आँसूओ की धारा को देखकर कबीर दास की दशा स्थिर न रही-

पर न दे सकी धीर प्रिया को, प्रियतम की अधीर जिज्ञासा
मन प्राणों की घुटन, विवशता भार ढो रही थी कुत्सा का
तदपि प्रिया ने अश्रु-लड़ी में पिरो-पिरो कर अकथ कह दिया
प्राणों ने प्राणो को अपने विष से ओत प्रोत कर दिया ।
लोई ने जो कुछ कहा बहुत ही तीखा था
ऐसा सुनकर कब कबीर ने चुप रहना भी सीखा था
किन्तु हुई थी दशा भिन्न ही तब कबीर की
अप्रत्याशित संधि हो गई अग्नि नीर की ।[9]

सब जानकर कबीरदास जी स्तब्ध होकर क्रोध मे हो जाते है उनका गला भी भर आया और तब वे एक पल भी न रुक सके और अपने कक्ष में आ जाते है एक तरफ धर्म दूसरी तरफ कर्तव्य तब वे आसमान में रुके हुए यान की तरह अपनी सेज पर गिर जाते है और अपने कर्तव्य को पूरा करने के लिए वह भगवान से प्रार्थना करते है कि वह उनका मार्ग प्रशस्त करे कि वह क्या करे -

रक्त प्लावित हो गये थे नयन क्रोधोन्मेष में
कंठ का स्वर भी हुआ अवरुद्ध था आवेश में
घोर क्षत-विक्षत हृदय में थे कसकते तीव्र व्रण
बरसते थे दीप्त मस्तक पर घुमड़ते स्वेद-धन।
एक क्षण भी जब ठहरने को हुए असमर्थ
लौट आए त्वरित अपने कक्ष में, दो अर्थः
एक तो वे चाहते थे सन्तुलन पाना
दूसरे कर्तव्य के प्रति सजग हो निष्कर्ष लेना
वहाँ आकर वे गिरे निज सेज पर असहाय ऐसे

टूट गिरता है सदा गतिहीन हो नभ-यान जैसे
फिर विचारों का उठा अंधड़ भयानक
हिल गई अस्तित्व की सब भित्तियाँ जड़ से अचानक
दो विरोधी जूझते कर्तव्य
कर रहे थे घोषणा - 'दो हव्य, मेरा हव्य'
इधर था जब प्रिया का सत्, वह सनातन मोह
तो उधर था वचन देकर किया सौदा, हाय रे व्यामोह
था परस्पर सर्पदंशी उग्र अति संघर्ष
जबकि वांछित स्वस्थ चिंतन, हुए बाधा ग्लानि और अमर्ष
हृदय में गूँजी तभी यह प्रार्थना
भक्त की भगवान से अभ्यर्थना-
"हे प्रभो, हे सृष्टि सिरजनहार
द्वार पर तेरे पड़ा मैं कर रहा चीत्कार
तुम परम चैतन्य हो इस जड़ प्रकृति के
तुम नियन्ता हो जगत के, नियति के
मिला यह जीवन तुम्ही से, पितृ हो तुम
कर रहे पोषण हमारा , मातृ हो तुम
कौन सी वह भूल जिसका दण्ड इतना दे रहे हो
कौन सी बह चूक जिसका मूल्य इतना ले रहे हो
देव, मैं तेरी कृपा पर प्राणपण से हूँ समर्पित
फूँक दो आलोक की ज्वाला, करूँ कर्तव्य निश्चित।"[10]

कबीरदास जी जब भगवान से प्रार्थना करते है तब उन्हे भगवान का ज्ञान रुपी मार्ग प्रशस्त होता है तब वे लोई की व्यथा का समाधान करने का निर्णय लेते है -

तब मिला आलोक का वह मधु, अभीप्सित दान
पा जिसे वे हो उठे कृतकृत्य, अद्भुत ज्ञान
प्राण में गूँजा अलौकिक अलभ अनहद नाद
सुना, अति स्पष्ट था आदेश, परे विवाद -
जान लो यह आज, पत्नी रूप में लोई हुई मृत
तभी उसको सखा-भगिनी रुप में तुम करो स्वीकृत
फिर करो सम्मान उसके वचन का
है नहीं अब प्रश्न कुछ भी चयन का
अथच तेरी नियति भी है भिन्न मुझसे कुछ नहीं
बह रहा आलोक-मधु निर्बाध,
अवगाहन करो, कुछ भय नहीं।'
हो उठे आशवस्त पा आदेश प्रभु का
धुला सकल विषाद तन-मन-प्राण का
तब चले उठ दर्द का उपचार करने प्रिया का
जो मरण को जन्म दे, विश्वास ले उस प्रक्रिया का । [11]

जब कबीरदास जी लोई के पास जाते है और देखते है कि वह अपनी व्यथा मे उलझी हुई प्राणहीन की तरह लेटी थी तो कबीरदास जी लोई का सिर अपनी गोद में रखकर अपनी उगंलियो से उनके बालो को सहलाते हुए कहते है कि प्रिये मैं तुम्हारी व्यथा को समझता हूँ तुम्हारे लिए मेरी जो भावनायें है तुम उन्हे सुन नही पा रही हो तुम अपने आँसुओ को पोछो और अपना साहस मत हारो और अपने वचन को पूर्ण करने के लिये समझाते है –

जाकर देखा प्रिया अभी भी भूलुंठित निष्प्राण पड़ी थी
गत-आगत की क्रूर भुजाओं मे उलझी वह छिन्न कड़ी थी
प्रिया-शीश को उठा अंक में केश-राशि के बन्धन खोले
अंगुलियो का वरद स्पर्श दे, अति गंभीर संयत स्वर बोले-
"मैं देख रहा हूँ प्राण तुम्हारी दग्ध चेतना
मैं समझ रहा हूँ, प्रिये तुम्हारी विषम वेदना
किन्तु वेदना का मेरा सत्कार नहीं तुम उठा सकोगी
मेरे रोम-रोम से उसकी स्तुतियाँ भी सुन न सकोगी
तभी प्रबोध पोंछ ले आँसू अब क्यों इतना साहस हारी
तेरे पतिव्रत के सम्मुख स्वर्ग-देवियाँ लज्जित सारी

कलियुग की सती तुम्हारी स्तुति में मैं आत्म-विभोर हुआ
सच कहता हूँ चरण-वंदना के हित ही वाचाल हुआ
सीता का सतीत्व तो केवल इतने भर से पूज्य बना था
मनवाणी से स्वप्नों में भी अन्य पुरुष का ध्यान नहीं था
तेरी तुलना में अब क्या सतयुग की सीता ठहरेगी
जिसका सतीत्व बस केवल...."[12]

जब कबीरदास जी लोई को अपना वचन पूर्ण करने को कहते है तो वह ऐसा करने के लिये मना करती है तो कबीरदास जी उन्हे समझाते है-

नाथ न कहो ऐसा, मैं मर जाऊँगी
मुझ दासी पर दया करो विष खा लूंगी।"
"मैं देख रहा हूँ, प्रिये तुम्हारी आस्थाओं की दग्ध-चेतना
मैं समझ रहा हूँ प्राण तुम्हारे मन-प्राणों की मर्म-वेदना
किन्तु पतिव्रत तुम्हारा कर चुका स्वीकार अब तो अग्नि-दीक्षा
द्विधा का विस्फोट, तेरा आत्म-मंथन, हाय कैसी ये परीक्षा

नर-पिशाच की रक्त-पिपासा में तेरा बलिदान
देख रहा हूँ बनकर बरसेगा अमृत वरदान
आज हुआ जो अन्त यहाँ तो यही हमारा आदि बनेगा
जान चुका हूँ अब तो अपना जीवन शाशवत यज्ञ बनेगा।।"[13]

लोई की चेतना शून्य हो जाती है और वे कबीरदास जी से कहती है कि आपका आदेश यही है कि मैं वचन रूपी पाप को पूरा करु तो कबीर दास जी कहते है कि यह आदेश नही है और यह वचन पाप नही बल्कि देवो का पुण्य है तुम्हारी इस बलिदान से तुम्हारी महिमा बढ़ेगी....

लोई की बधिर-चेतना ने कुछ सुना नही, पर बूझ लिया

प्रियतम की अभिप्रेत 'अग्नि-दीक्षा' क्या है, सब समझ लिया
नारी-मन का शाश्वत सम्बल तब ढ़ह गया अकल्पित
और प्रश्न वह साधिकार हो मुखरित हुआ अकम्पित -
"क्या यही आदेश हैं मेरे लिए अब आपका
वचन जो दे आई हूँ, पूरा करुँ वह पाप का?"
"नही-नही, आदेश नहीं, यह है विनम्र स्वीकार लघुत्तम
नहीं इसे तुम पाप मत कहो, ये है देवों का पुण्य महत्तम
ये जो ऐसा वचन वहाँ तू दे आई है
आदर्शों की बलिवेदी पर, एक यशस्वी आत्माहुति भी कर आई है
कहाँ मिलेगी इसकी उपमा, इतनी गरिमा
सम्मुख इसके लघु हो जाएगी हर महिमा।"[14]

कबीरदास जी के ऐसे वचनो को सुनकर लोई कहती है कि इससे महिमा नही बढ़ेगी बल्कि मेरे पुण्य भी नष्ट हो जायेगे तब कबीरदास जी लोई को समझाते है कि सतीत्व केवल शरीर से ही नही होता-

"नहीं-नहीं, मैं लेशमात्र भी महिमामयी नहीं हूँ
व्यर्थ मुझे इतना न सताओ, मैं हतभाग्य दुखी हूँ
गत जो था, था, पर अब तो मैं परम घृण्य पतिता हूँ
मेरे सारे पुण्य क्षय हुए, वेश्या हूँ, दलिता हूँ।"
"थोड़ा धैर्य करो फिर सोचो क्या सतीत्व केवल शरीर है?
यदि विचार बन नहीं जिया वह तो उसका आदर्श दूर है
तेरा सतीत्व क्या किसी विवशता में ऐसा मुरझा जाएगा
आगत औ वर्तमान का सारा वैभव स्वाहा होगा?
वह तो ऐसा तपः पूत वैश्वानर है
जो सतत प्रज्वलित है, शाश्वत है, अक्षर है।[15]

कबीरदास जी पहले की बातो को सोचकर लोई से पूछते है कि क्या अतीत में जो हो चुका वह कुछ अपना था और जो अभी हो रहा है इन सबमें अपना क्या है यह माया रुपी शरीर का मोह क्या है। इससे हमे कुछ मिलना ही नही। यह तो मात्र भौतिक शरीर है जिसका उपयोग पृथ्वी पर आत्मा के जुड़ाव के दौरान किया जाता है। अतः हमें सत्य को आत्मसात करना चाहिए।

फिर गत-आगत और वर्तमान की बातें
सचमुच ही है घोर प्रवचक घातें
अच्छा लोई, सच बतलाना
बातो में ही मत बहलाना
यह अतीत कब केवल अपना ही हो पाया
जितना अपना उतना ही यह बना पराया
ऐसा ही वह वर्तमान है
नही भविष्यत का भी इससे भिन्न ज्ञान है
सुख-दुख के क्षण है, सपने है, आशा है
कड़वे-तीखे अनुभव है, घोर निराशा है
लगता था स्वामित्व अकेला अपना है इन सब पर
पर देख रहा हूँ बाँट लिया सब, दुनियों ने षडयंत्र कर
मैं ऊब चुका हूँ इस सबसे, क्या किया नहीं

अपना ही कह सकें जिसे, वह मिला नहीं
अब यह शरीर का मोह हमारा आज हुआ जो सहज तिरोहित
तो विराट की व्यापकता में, क्यों न भला हो पूर्ण समाहित?[16]

कबीरदास जी के लोई से पूछने पर लोई कहती है कि वह इतनी शक्तिशाली नही है कि उन्हे कोई सलाह दे सके लोई के लिये तो कबीरदास जी ही उनके देवता और आर्दश है और वही सृष्टि-संसार है। अब इसे आप मोह कहें या अधिकार आप ही मेरा सब कुछ है। क्योंकि एक नारी के लिए उसका पति ही सर्वस्व होता है।

"स्वामी, मैं कब हूँ समर्थ इतनी, कि कुछ परामर्श दूँ
तुम मेरे देवाधिदेव हो, बोलो क्या आदर्श लूँ?
मैं किस विराट की करूँ कल्पना, मेरे विराट जब एक तुम्ही हो
तुम मोह कहो, या शक्ति कहो, पर मेरे तो सम्पूर्ण तुम्ही हो।"[17]

तब लोई के इतना कहने पर कबीरदास जी अपनी दोनो हथेलियो को मिलाकर प्रार्थना के भाव से उस देवी रुपी लोई से कहते है कि अब देरी मत करो अपने वचन को पूर्ण करो मैं तुम्हारा मोह नही अधिकार हूँ जो हमेशा रहेगा।

बाँध लिया तब निज अंजलि में कल्याणी मुख-कंज को
कुछ स्वयं झुके, कुछ उठा लिया अमृत देने विष-दंश को
"मोह नहीं मैं कभी तुम्हारा, सदा शक्ति था, शक्ति रहूँगा
उठो प्रिये, लो सावधान हो, किंचित अब न विलम्ब करूँगा।"[18]

कबीरदास जी के ऐसे वचनो को सुनकर लोई काँप जाती है जो अमृत का पात्र था वह समाहित होकर जहर के पात्र के समान हो गया और सर्वस्व कालिमा छा गई क्योंकि एक स्त्री के लिए तो उसका सतीत्व ही उसके प्राणो के समान होता है। इस मनोदशा से वह विचलित हो जाती है।

"लोई थर्रा उठी अचानक, वज्र-निपात हुआ था
सुधा-पात्र हो गया तिरोहित, गरल-पात्र सम्मुख था
रजनी का आलोक बुझ गया, तम का बन्धन प्रबल हुआ
प्रियतम ने संयत होने को कहा, किन्तु स्खलन हुआ।[19]

लेकिन कबीरदास जी के पास कोई दूसरा उपाय नही था और वे लोई की मनोदशा को समझते हुए स्वयं ही उन्हे ले जाने का निर्णय करते है। शाश्वत को स्वीकार करते हुए वह उस कार्य को करने के लिए तैयार हो जाते है और वे लोई को स्वयं ही गोद में उठाकर ले जाते है और लोई शोक मे व्याकुल होकर रोती हुयी उनकी गोद में चली जाती है।

पर कबीर के सम्मुख शेष न था विकल्प भी दूजा
इसीलिए उनकी दृढंता का, कालजयी पौरुष-स्वर गूँजा
"आज जब कम्पित तुम्हारे प्राण-तन-मन
तब सहज थर्रा उठेंगे उधर जाने को चरण
आ तुझे मैं गोद में ले स्वयं जाकर छोड़ आऊँ
मृत्यु के अभिशाप का वरदान पाकर धन्य जाऊँ।"
इतना कहकर प्राण-प्रिया को उठा लिया निज गोद में
तब तो लोई सिसक-सिसक कर बरस पड़ी थी शोक में।[20]

अनन्तर, लोई को कबीर द्वारा स्वयं लाया देख उस कामुक व्यवसायी का हृदय-परिवर्तन हुआ और उसने संत कबीर के चरणों पर मस्तक टेक कर उनसे क्षमा-याचना की।[21]

निष्कर्षः- अंततः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि कवि सनागो जी की कथात्मक कविता में व्याप्त बिड़म्बना, बोध, संवेदना को बहुत ही बारीक और मार्मिक ढ़ग से व्यक्त किया गया है। उन्होने कबीरदास जी की कथा को बहुत ही सहजता से कविता रूपी माला में पिरो दिया। मनुष्य के अंदर की संवेदना को बहुत ही संवेदनशील ढ़ग से प्रस्तुत किया जो बहुत ही सर्वश्रेष्ठ है।

सन्दर्भ ग्रंथः-

01ण कवि सनागो, कवि जनक (काव्य संग्रह) सहित "कबीर का आत्मबोध" प्राध्यापक श्री सिंह द्वारा लिया गया साक्षात्कार , पेज नं.- 34

02ण कवि सनागो, कवि जनक (काव्य संग्रह) सहित "कबीर का आत्मबोध" पीठिका, पेज नं.- 22

03ण ड़ा. श्याम सुन्दरदास, कबीर ग्रन्थावली, पेज नं.- 214

04ण सं. युगेश्वर, कबीर समग्र, पेज नं.- 463

05ण ड़ा. श्याम सुन्दरदास, कबीर ग्रन्थावली, भूमिका, पेज नं.- 35

06ण सं. युगेश्वर, कबीर समग्र, पेज नं.- 453

07ण सं. युगेश्वर, कबीर समग्र, पेज नं.- 453

08ण कवि सनागो, कवि जनक (काव्य संग्रह) सहित "कबीर का आत्मबोध" काम-जय, पेज नं.-23

09ण कवि सनागो, कवि जनक (काव्य संग्रह) सहित "कबीर का आत्मबोध" काम-जय, पेज नं.-23

10ण कवि सनागो, कवि जनक (काव्य संग्रह) सहित "कबीर का आत्मबोध" काम-जय, पेज नं.-24

11ण कवि सनागो, कवि जनक (काव्य संग्रह) सहित "कबीर का आत्मबोध" काम-जय, पेज नं.-25

12ण कवि सनागो, कवि जनक (काव्य संग्रह) सहित "कबीर का आत्मबोध" काम-जय, पेज नं.-26

13ण कवि सनागो, कवि जनक (काव्य संग्रह) सहित "कबीर का आत्मबोध" काम-जय, पेज नं.-26

14ण कवि सनागो, कवि जनक (काव्य संग्रह) सहित "कबीर का आत्मबोध" काम-जय, पेज नं.-26

15ण कवि सनागो, कवि जनक (काव्य संग्रह) सहित "कबीर का आत्मबोध" काम-जय, पेज नं.-27

16ण कवि सनागो, कवि जनक (काव्य संग्रह) सहित "कबीर का आत्मबोध" काम-जय, पेज नं.-27

17ण कवि सनागो, कवि जनक (काव्य संग्रह) सहित "कबीर का आत्मबोध" काम-जय, पेज नं.-28

18ण कवि सनागो, कवि जनक (काव्य संग्रह) सहित "कबीर का आत्मबोध" काम-जय, पेज नं.-28

19ण कवि सनागो, कवि जनक (काव्य संग्रह) सहित "कबीर का आत्मबोध" काम-जय, पेज नं.-28

20ण कवि सनागो, कवि जनक (काव्य संग्रह) सहित "कबीर का आत्मबोध" काम-जय, पेज नं.-28

21ण कवि सनागो, कवि जनक (काव्य संग्रह) सहित "कबीर का आत्मबोध" काम-जय, पेज नं.-28